श्रीमद्भागवतम्

प्रथम स्कन्ध

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 15

पाण्डवों की सामयिक निवृत्ति

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् कृष्ण का विख्यात मित्र अर्जुन, महाराज युधिष्ठिर की सशंकित जिज्ञासाओं के अतिरिक्त भी, कृष्ण के वियोग की प्रबल अनुभूति के कारण शोक- संतप्त था।

श्लोक 2: शोक से अर्जुन का मुँह तथा कमल-सदृश हृदय सूख चुके थे, अतएव उसकी शारीरिक कान्ति चली गई थी। अब भगवान् का स्मरण करने

पर, वह उत्तर में एक शब्द भी न बोल पाया।

श्लोक 3: उसने बड़ी कठिनाई से आँखों में भरे हुए शोकाश्रुओं को रोका। वह अत्यन्त दुखी था, क्योंकि भगवान् कृष्ण उसकी दृष्टि से ओझल थे और वह उनके लिए अधिकाधिक स्नेह का अनुभव कर रहा था।

श्लोक 4: भगवान् कृष्ण को तथा उनकी शुभकामनाओं, आशीषों, घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्ध एवं उनके रथ हाँकने का स्मरण करके, अर्जुन

का गला रुँध आया और वह भारी साँस लेता हुआ बोलने लगा।

श्लोक 5: अर्जुन ने कहा : हे राजन्, मुझे अपना घनिष्ठ मित्र माननेवाले भगवान् हरि ने मुझे अकेला छोड़ दिया है। इस तरह मेरा प्रबल पराक्रम, जो देवताओं तक को चकित करनेवाला था, अब मुझमें नहीं रह गया है।

श्लोक 6: मैंने अभी-अभी उन्हें खोया है, जिनके क्षणमात्र वियोग से सारे ब्रह्माण्ड प्रतिकूल तथा शून्य हो

जायेंगे, जिस तरह प्राण के बिना शरीर।

श्लोक 7: उनकी कृपामयी शक्ति से ही मैं उन समस्त कामोन्मत्त राजकुमारों को परास्त कर सका, जो राजा द्रुपद के महल में स्वयंवर के अवसर पर एकत्र हुए थे। अपने धनुषबाण से मैं मत्स्य लक्ष्य का भेदन कर सका और इस प्रकार द्रौपदी का पाणिग्रहण कर सका।

श्लोक 8: चूँकि वे मेरे निकट थे, अतएव मेरे लिए अत्यन्त कौशलपूर्वक स्वर्ग के शक्तिशाली राजा इन्द्रदेव को

उनके देव-पार्षदों सहित जीत पाना सम्भव हो सका और इस तरह अग्निदेव खाण्डव वन को विनष्ट कर सके। उन्हीं की कृपा से, मय नामक असुर को जलते हुए खाण्डव वन से बचाया जा सका। इस तरह हम अत्यन्त आश्चर्यमयी शिल्प-कला वाले सभाभवन का निर्माण कर सके, जहाँ राजसूय-यज्ञ के समय सारे राजकुमार एकत्र हो सके और आपको आदर प्रदान कर सके।

श्लोक 9: दस हजार हाथियों की शक्ति रखनेवाले आपके छोटे भाई ने भगवान् की ही कृपा से जरासंध का

वध किया, जिसकी पादपूजा अनेक राजाओं द्वारा की जाती थी। ये सारे राजा जरासंध के महाभैरव यज्ञ में बलि चढ़ाये जाने के लिए लाए गये थे, किन्तु उनको छुड़ा दिया गया। बाद में उन्होंने आपका आधिपत्य स्विकार किया।

श्लोक 10: उन्होंने ही उन दुष्टों की पत्नियों के बाल खोल दिये, जिन्होंने आपकी महारानी (द्रौपदी) की उस चोटी को खोलने का दुस्साहस किया था, जो महान् राजसूय-यज्ञ अनुष्ठान के अवसर पर सुन्दर ढंग से सजाई तथा पवित्र की

गई थी। उस समय वह अपनी आँखों में आँसू भर कर भगवान् कृष्ण के चरणों पर गिर पड़ी थी।

श्लोक 11: हमारे वनवास के समय, दस हजार शिष्यों के साथ भोजन करनेवाले दुर्वासा मुनि ने हमें भयावह संकट में डालने के लिए, हमारे शत्रुओं के साथ मिलकर चाल चली। उस समय उन्होंने (कृष्ण ने) केवल जूठन ग्रहण करके हमें बचाया था। इस तरह उनके भोजन ग्रहण करने से नदी में स्नान करती मुनि-मण्डली ने अनुभव किया कि वह

भोजन से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो गई और तीनों लोक भी सन्तुष्ट हो गये।

श्लोक 12: यह उन्हीं का प्रताप था कि मैं एक युद्ध में शिवजी तथा उनकी पत्नी पर्वतराज हिमालय की कन्या को आश्चर्यचकित करने में समर्थ हुआ। इस तरह वे (शिवजी) मुझ पर प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे अपना निजी अस्त्र प्रदान किया। अन्य देवताओं ने भी मुझे अपने-अपने अस्त्र भेंट किये और इसके अतिरिक्त, मैं इसी वर्तमान शरीर से स्वर्गलोक पहुँच सका, जहाँ मुझे आधे ऊँचे आसन पर बैठने दिया गया।

श्लोक 13: जब मैं स्वर्गलोक में अतिथि के रूप में कुछ दिन रुका रहा, तो इन्द्रदेव समेत स्वर्ग के समस्त देवताओं ने निवातकवच नामक असुर को मारने के लिए गाण्डीव धनुष धारण करनेवाली मेरी भुजाओं का आश्रय लिया था। हे आजमीढ के वंशज राजा, इस समय मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से विहीन हो गया हूँ, जिनके प्रभाव से मैं इतना शक्तिशाली था।

श्लोक 14: कौरवों की सैन्यशक्ति उस समुद्र की तरह थी, जिसमें अनेक अजेय प्राणी रहते थे। फलत: वह

दुर्लंघ्य थी। किन्तु उनकी मित्रता के कारण, मैं रथ पर आरूढ़ होकर, उसे पार कर सका। यह उन्हीं की कृपा थी कि मैं गौवों को वापस ला सका और बलपूर्वक राजाओं के तमाम मुकुट एकत्र कर सका, जो समस्त तेज के स्रोत रत्नों से जटित थे।

श्लोक 15: एकमात्र वे ही थे जिन्होंने सबों की आयु छीन ली थी और जिन्होंने युद्धभूमि में भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य, इत्यादि कौरवों द्वारा निर्मित सैन्य-व्यूह की कल्पना तथा उत्साह को हर लिया था। उन सबकी योजना अत्यन्त पटु थी और

आवश्यकता से अधिक थी, लेकिन उन्होंने (भगवान् श्रीकृष्ण ने) आगे बढक़र यह सब कर दिखाया।

श्लोक 16: भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ तथा बाह्लिक जैसे बड़े-बड़े सेनापतियों ने अपने-अपने अचूक हथियार मुझ पर चलाये, लेकिन उनकी (भगवान् कृष्ण की) कृपा से सब वे मेरा बाल बाँका भी न कर पाये। इसी प्रकार भगवान् नृसिंह देव के परम भक्त प्रह्लाद महाराज असुरों द्वारा प्रयुक्त समस्त शस्त्रास्त्रों से अप्रभावित रहे।

श्लोक 17: यह उन्हीं की कृपा थी कि जब मैं अपने प्यासे घोड़ों के लिए जल लेने रथ से नीचे उतरा था, तो मेरे शत्रुओं ने मुझे मारने की परवाह न की। यह तो अपने प्रभु के प्रति मेरा असम्मान ही था कि मैंने उन्हें अपना सारथी बनाने का दुस्साहस किया, क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ पुरुष उनकी पूजा तथा सेवा करते हैं।

श्लोक 18: हे राजन्, उनके परिहास तथा उनकी मुक्त बातें अत्यन्त सुहावनी तथा सौंदर्य से अलंकृत होती थीं। “हे पार्थ, हे सखा,

हे कुरुनन्दन" कहकर उनका पुकारना तथा उनकी समस्त सहृदयता की अब मुझे याद आ रही है और मैं अभिभूत हूँ।

श्लोक 19: सामान्यत: हम दोनों साथ-साथ रहते और सोते, साथ-साथ बैठते और घूमने जाते। और बहादुरी के कार्यों के लिए आत्म-प्रशंसा करते हुए कभी-कभी यदि कोई भूल होती, तो मैं उन्हें यह कहकर चिढ़ाया करता था "हे मित्र, तुम तो बड़े सत्यवादी हो।" उस समय भी जब उनका महत्व घटता होता, वे परमात्मा होने के कारण, मेरी

उटपटांग बातों को सह लेते थे और मुझे उसी प्रकार क्षमा कर देते थे जिस तरह एक सच्चा मित्र अपने सच्चे मित्र को या पिता अपने पुत्र को क्षमा कर देता है।

श्लोक 20: हे राजन्, अब मैं अपने मित्र तथा सर्वाधिक प्रिय शुभचिन्तक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से विलग हो गया हूँ, अतएव मेरा हृदय हर तरह से शून्य-सा प्रतीत हो रहा है। उनकी अनुपस्थिति में, जब मैं कृष्ण की तमाम पत्नियों की रखवाली कर रहा था, तो अनेक अविश्वस्त ग्वालों ने मुझे हरा दिया।

श्लोक 21: मेरे पास वही गाण्डीव धनुष है, वे ही तीर हैं, उन्हीं घोड़ों के द्वारा खींचा जानेवाला वही रथ है और उन्हें इस्तेमाल करनेवाला मैं वही अर्जुन हूँ, जिसके सामने सारे राजा सिर झुकाया करते थे। किन्तु भगवान् कृष्ण की अनुपस्थिति में वे सब एक ही क्षण में शून्य हो गये हैं। यह वैसा ही है जैसे राख में घी की आहूति डालना, जादू की छड़ी से धन एकत्र करना या बंजर भूमि में बीज बोना।

श्लोक 22-23: हे राजन्, चूँकि आपने द्वारका नगरी के हमारे मित्रों तथा सम्बन्धियों के विषय में पूछा है,

अतएव मैं आपको सूचित कर रहा हूँ कि वे सब ब्राह्मणों द्वारा शापित होकर, सड़े हुए चावलों से बनी शराब पीकर उन्मत्त हो उठे और एक-दूसरे को न पहचानने के कारण लाठियाँ लेकर परस्पर लडऩे लगे। अब केवल चार-पाँच को छोडक़र शेष सभी मर चुके हैं।

श्लोक 24: वास्तव में यह सब भगवान् की इच्छा के फलस्वरूप है कि कभी-कभी लोग एक दूसरे को मार डालते हैं और कभी एक दूसरे की रक्षा करते हैं।

श्लोक 25-26: हे राजन्, जिस तरह समुद्र में बड़े तथा बलशाली जलचर, छोटे-मोटे तथा निर्बल जलचरों को निगल जाते हैं, उसी तरह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने भी धरती का भार हलका करने के लिए, निर्बल यदु को मारने के लिए बलशाली यदु को और छोटे यदु को मारने के लिए बड़े यदु को भिड़ा दिया है।

श्लोक 27: अब मैं भगवान् (गोविन्द) द्वारा मुझे दिये गये उपदेशों की ओर आकृष्ट हूँ, क्योंकि वे देश-काल की समस्त परिस्थितियों में

हृदय की जलन को शान्त करनेवाले आदेशों से परिपूर्ण बनाए गये हैं।

श्लोक 28: सूत गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार भगवान् के उपदेश, जो अत्यधिक घनिष्ठ मित्रता में प्रदान किये गये थे उसके विषय में सोचने में तथा उनके चरणकमलों का चिन्तन करने में तल्लीन अर्जुन का मन शान्त और समस्त भौतिक कल्मष से रहित हो गया।

श्लोक 29: अर्जुन द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का निरन्तर स्मरण किये जाने से उसकी भक्ति

तेजी से बढ़ गई, जिसके फलस्वरूप उसके विचारों का सारा मैल दूर हो गया।

श्लोक 30: भगवान् की लीलाओं तथा कार्यकलापों के कारण तथा उनकी अनुपस्थिति से ऐसा लगा कि अर्जुन भगवान् द्वारा दिये गये उपदेशों को भूल गया हो। लेकिन, वास्तव में बात ऐसी न थी और वह पुन: अपनी इन्द्रियों का स्वामी बन गया।

श्लोक 31: आध्यात्मिक सम्पत्ति से युक्त होने के कारण उसके द्वैत के संशय पूर्ण रूप से छिन्न हो गये। इस

तरह वह भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से मुक्त होकर अध्यात्म में स्थित हो गया। अब जन्म तथा मृत्यु के पाश में उसके फँसने की कोई आशंका न थी, क्योंकि वह भौतिक रूप से मुक्त हो चुका था।

श्लोक 32: भगवान् कृष्ण के स्वधाम गमन को सुनकर तथा यदुवंश के पृथ्वी के अस्तित्व का अन्त समझकर, महाराज युधिष्ठिर ने भगवद्धाम जाने का निश्चय किया।

श्लोक 33: अर्जुन द्वारा यदुवंश के नाश तथा भगवान् कृष्ण के

अन्तर्धान होने की बात सुनकर, कुन्ती ने पूर्ण मनोयोग से दिव्य भगवान् की भक्ति में अपने को लगा दिया और इस तरह संसार के आवागमन से मोक्ष प्राप्त किया।

श्लोक 34: सर्वोपरि अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने यदुवंश के सदस्यों से अपना-अपना शरीर त्याग करवा दिया और इस तरह उन्होंने पृथ्वी के भार को उतारा। यह कार्य काँटे को काँटे से निकालने जैसा था, यद्यपि नियन्ता के लिए दोनों एक से हैं।

श्लोक 35: परमेश्वर ने जिस शरीर को पृथ्वी का भार कम करने के लिए प्रकट किया था, उसे उन्होंने छोड़ दिया। वे एक जादूगर के समान विभिन्न शरीरों को, यथा मत्स्य अवतार तथा अन्य अवतारों में धारण करने के लिए एक शरीर को छोड़ते हैं।

श्लोक 36: जब भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने उसी रूप के साथ इस पृथ्वीलोक को छोड़ दिया, उसी दिन से कलि, जो पहले ही अंशत: प्रकट हो चुका था, अल्पज्ञों के लिए अशुभ परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए पूरी तरह प्रकट हो गया।

श्लोक 37: महाराज युधिष्ठिर पर्याप्त बुद्धिमान थे कि वे कलियुग के प्रभाव को समझ गये, जिसके विशेष लक्षण होते हैं—बढ़ता लालच, असत्य भाषण, धोखा देना तथा सारी राजधानी, राज्य, घर तथा समस्त व्यक्तियों में हिंसा का आधिक्य इत्यादि। अतएव उन्होंने घर छोडऩे की तैयारी की और तदनुकूल वस्त्र धारण कर लिये।

श्लोक 38: तत्पश्चात् उन्होंने हस्तिनापुर की राजधानी में, उन्होंने अपने पौत्र को सिंहासनारूढ़ किया, जो समुद्र से घिरी सारी भूमि के

स्वामी तथा सम्राट के रूप में प्रशिक्षित था और उन्हीं के समान सुयोग्य था।

श्लोक 39: तब उन्होंने अनिरुद्ध (भगवान् कृष्ण के पौत्र) के पुत्र वज्र को मथुरा में शूरसेन का राजा बना दिया। तत्पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने प्राजापत्य यज्ञ किया और गृहस्थ जीवन त्यागने के लिए अपने भीतर अग्नि प्रतिष्ठित की।

श्लोक 40: महाराज युधिष्ठिर ने अपने सारे वस्त्र, कमर-पेटी तथा राजसी आभूषण तुरन्त त्याग दिये

और वे पूर्ण रूप से उदासीन तथा प्रत्येक वस्तु से विरक्त हो गये।

श्लोक 41: तब उन्होंने अपनी सारी इन्द्रियों को मन में, मन को जीवन में, जीवन को प्राण में, अपने पूर्ण अस्तित्व को पाँच तत्त्वों के शरीर में तथा अपने शरीर को मृत्यु में समाहित कर दिया। तत्पश्चात् शुद्ध आत्मा के रूप में वे देहात्म-बुद्धि से मुक्त हो गये।

श्लोक 42: इस प्रकार उन्होंने पंचत्त्वमय स्थूल शरीर को विनष्ट करके, प्रकृति के तीन गुणों में

मिलाकर उसे अज्ञानता में मिला दिया और तब उस अज्ञानता को आत्मा या ब्रह्म में विलीन कर दिया, जो सर्वदा अक्षय है।

श्लोक 43: तत्पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने फटे हुए वस्त्र पहन लिये, ठोस आहार लेना बन्द कर दिया, वे जान कर गूँगे बन गये और बालों को खोल दिया। इन सबके मिल-जुले रुप में, वे एक उजड्ड या वृत्तिविहीन पागल की तरह दिखने लगे। वे किसी वस्तु के लिए अपने भाइयों पर आश्रित नहीं रहे। वे बहरे मनुष्य की तरह कुछ भी न सुनने लगे।

श्लोक 44: तब उन्होंने उत्तर दिशा की ओर अपने पूर्वजों तथा महापुरुषों द्वारा स्वीकृत पथ पर चलते हुए प्रस्थान किया, जिससे वे परमेश्वर के विचार में पूर्ण रूप से लग सकें। वे जहाँ कहीं भी गये, इसी तरह रहे।

श्लोक 45: महाराज युधिष्ठिर के छोटे भाईयों ने देखा कि कलियुग का पहले से ही संसार भर में पदार्पण हो चुका है और राज्य के नागरिक पहले से ही अधर्म द्वारा प्रभावित हैं। अतएव उन्होंने अपने बड़े भाई के चरण-

चिन्हों का अनुगमन करने का निश्चय किया।

श्लोक 46: उन्होंने धर्म के सारे नियम सम्पन्न कर लिये थे। अतएव उनका यह निश्चय ठीक ही था कि भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल ही सबों के चरम लक्ष्य हैं। अतएव उन्होंने बिना व्यवधान के उनके चरणों का ध्यान किया।

श्लोक 47-48: इस प्रकार भक्तिभाव से निरन्तर स्मरण करने से उत्पन्न भक्तिमयी शुद्ध चेतना के द्वारा उन्होंने आदि नारायण भगवान् कृष्ण

द्वारा अधिशासित वैकुण्ठलोक प्राप्त किया। यह वैकुण्ठलोक केवल उन्हें प्राप्त होता है, जो अविचल भाव से एक परमेश्वर का ध्यान धरते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का यह धाम गोलोक वृन्दावन कहलाता है और यह उन व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होता, जो जीवन की भौतिक अवधारणा में लीन रहते हैं। लेकिन समस्त भौतिक कल्मष से पूर्ण रूप से शुद्ध होने के कारण पाण्डवों ने अपने इसी शरीर में उस धाम को प्राप्त किया।

श्लोक 49: तीर्थाटन के लिए गये हुए विदुर ने प्रभास में अपना शरीर

त्याग किया। चूँकि वे भगवान् कृष्ण के विचार में मग्न रहते थे, अतएव उनका स्वागत पितृलोक के निवासियों ने किया, जहाँ वे अपने मूल पद पर लौट गये।

श्लोक 50: द्रौपदी ने भी देखा कि उसके पतिगण, उसकी परवाह किये बिना घर छोड़ रहे हैं। वे भगवान् वासुदेव कृष्ण को भलीभाँति जानती थीं। अतएव वे तथा सुभद्रा दोनों भगवान् कृष्ण के ध्यान में लीन हो गईं और अपने-अपने पतियों की सी गति प्राप्त की।

श्लोक 51: पाण्डु-पुत्रों द्वारा जीवन के परम लक्ष्य भगवद्धाम के लिए प्रस्थान का यह विषय अत्यन्त शुभ तथा परम पवित्र है। अतएव जो भी इस कथा को भक्तिभावपूर्वक सुनता है, वह जीवन की परम सिद्धि भगवद्भक्ति को निश्चय ही प्राप्त करता है।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव